अनन्तर/जनसत्ता/८ अप्रैल, २००७

लोग भूल गए हैं

ओम थानवी

डेमरारा नदी पर बना पुल यह जाहिर करने के लिए काफी था कि हम एक पिछड़े मुल्क में हैं। खट-खट के अनवरत समवेत और हिलती चूलों की आवाज सुनकर शक होता था कि पुल क्या हमें पार पहुंचा देगा? तुर्रा यह कि टैक्सी चालक ने पार जाने के लिए चुंगी भी अदा की। पुल से उतरे तो आगे गड्ढों से रोशन सड़क से सामना हुआ। राहत यही थी कि दोनों तरफ गन्ने के हरे-भरे खेत थे और आकाश में गहराते बादलों की घटा।

शहर के बाहर की जिंदगी देखने की गरज से हम जॉर्जटाउन की चौखट लांघ आए थे। महज साढ़े सात लाख की आबादी वाले देश गयाना की राजधानी में संसद, न्यायालय, सचिवालय, दूतावास, राष्ट्रपति निवास सब मुख्य बाजार के इर्द-गिर्द ही हैं। निर्वाचन आयोग जैसी छोटी इमारतों को देखकर एक दफा लगा, जैसे जोनाथन स्विफ्ट के किसी कल्पना-लोक में हों! शहर को पार करते ही आता था डेमरारा पुल। उसके पार देहात। या कहिए राजधानी का उपनगरीय जीवन।

कोई पंद्रह मिनट की तफरीह के बाद हम मित्रों की नजरें अचानक आकाश में ठहरी थीं। बादलों के लिए नहीं। बाईं बस्ती में एक छत पर साक्षात पवनसुत खड़े थे। सिर पर मुकुट, कांधे पर गदा धारण किए हुए। जिस देश की लगभग आधी आबादी भारतीय मूल के लोगों की हो, वहां हनुमान-प्रतिमा देखकर हमें हैरान क्यों होना चाहिए था। हुए, क्योंकि अपने नाक-नक्श वाले लोगों को छोड़कर परिवेश में अब तक ऐसा कुछ नहीं था जो यह बताए कि भारतीय त्वचा का समुदाय वहां सबसे बड़ा है। मैंने चालक को गाड़ी उस तरफ मोड़ने को कहा। नजदीक पहुंचे तो देखा नीचे श्रद्धालु का घर है, ऊपर देव। हनुमानजी के साथ ऊपर जाती सीढ़ियां, जैसे पानी की टंकियों पर बनी होती हैं। शायद अभिषेक या सज्जा के लिए रही हों। मूर्ति जमीन से कोई सत्तर-अस्सी फुट ऊंची थी।

लेकिन उस वक्त वहां कोई नहीं था। ठीक अगले घर के बाहर एक युवती जरूर थी। मैक्सी पहने हुए। थोड़ी दूरी पर ढीला-ढाला चोंगा पहने दीवार से सटी एक दूसरी स्त्री। वह उसकी मां थी। न हमें पहचानने में देर लगी, न उनको कि हममें एक मुल्क का रिश्ता है। जो भले उनसे छूट गया था। पराई वेशभूषा में वे कभी भारत से आए लोगों के वंशज थे। लड़की पढ़ी-लिखी थी। अपने दोस्त की राह देखती थी। उसकी अंग्रेजी में गयाना का लहजा था। नाम पूछा तो बताया- इंदुमति। मां का नाम इंद्राणी। मां चुपचाप हमें देखे जाती थी। आंखों में न कुतूहल, न जिज्ञासा। पर अपरिचय के बावजूद आत्मीयता थी। हमने कहा कि देश से आए हैं। उपराष्ट्रपति के साथ, जो यहां क्रिकेट-स्टेडियम का उद्घाटन करेंगे। कुछ जानना-समझना चाहते हैं।

मां ने न हां कहा न ना, पर इंदुमति की मुस्कान देखकर बात होने लगी। आपका कौन पुरखा भारत से पहले-पहल यहां आया होगा? इंदुमति ने मां के सामने सवाल दुहराया। उसी निस्संगता से एकटक देखते हुए मां ने जवाब दिया- घीसू। दूसरा जवाब: बिहार से। लेकिन आगे किसी सवाल का सकारात्मक जवाब हमें नहीं मिला। कभी भारत गए हैं? पिछली पीढ़ियों में कोई नहीं? हिंदी जानते हैं? भोजपुरी? फिर ये बजरंग बली यहां क्या कर रहे हैं? क्या आपका घर भीतर से देख सकते हैं? आखिरी सवाल अप्रत्याशित था, पर मां ने पहली दफा जिस्म में हरकत लाते हुए हाथ घर की ओर उठाया, जैसे बेटी को कहा कि दिखा आओ। अजनबी लोगों में एक सहज रिश्ता बहुत जल्दी कायम हो गया था। गोया सदियों की ढीली पड़ी डोर आपस में सहसा तन गई हो।

वह घर नया था। कुछ काम बाकी जान पड़ता था। उन लोगों के पहनावे की तरह वास्तुकला से लेकर घर की मेज-कुर्सी तक पर पश्चिम की मुहर थी। बीच में सोफा, उसके नीचे जर्जर कालीन, टीवी। जैसे शहरों में मध्य-निम्न-मध्य घर हमारे यहां होते हैं। इंदुमति हमें दूसरी मंजिल पर ले गई और बगैर कुछ कहे एक कोने की तरफ हाथ किया। वह उनका पूजा-घर था। देवी-देवताओं की छोटी-मोटी अनेक प्रतिमाएं। अगरबत्ती का

एक पाया। पीछे दो बेहद पुराने कैलेंडर। एक राम-सीता का, दूसरा कृष्ण का। इंदुमति ने बताया, वह नियमित पूजा करती है और मंगलवार का व्रत भी रखती है। ऐसे अनुष्ठान में मेरी क्या रुचि, पर बात वहां रुचिकर लगी। नीचे लौटे तब उसने घर की मुख्य दीवार के पास बना छोटा-सा मंदिर दिखाया। उसकी बगल में तुलसी का बड़ा-सा पौधा था। इनके साथ हवा में लहराती एक सफेद झंडी। पता चला कि ये तीन चीजें वहां हर हिंदू घर में लाजिमी तौर पर होती हैं।

फगवा (होली) और दीवाली यहां उत्साह से मनाते हैं। रामलीला भी। कार्तिक नहाते हैं। भारतीय वंश के बच्चे भारत के नृत्य और संगीत की दीक्षा लेते हैं। उनके नाम- ऊकचूक वर्तनी में- भारतीय होते हैं। आपसी रिश्ते-नाते प्रगाढ़ हैं। लौटते हुए गौर किया तो देखा कि जगह-जगह घरों की बाहरी दीवार पर सफेद झंडियां लहरा रही थीं। नदी किनारे श्मशान-घाट था। पता चला कि जिन हिंदुओं ने अंग्रेजों के राज में यहां ईसाई धर्म स्वीकार किया, उनमें कई परिवारों में अंतिम संस्कार अब भी हिंदू विधि से नदी किनारे करने का चलन है! जो थोड़े भारत से आए मुसलमान यहां हैं, पता चला वे भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आती तहजीबें और रिवायतें इसी तरह निभाते हैं।

कैरिबियाई क्षेत्र में गयाना वह देश है, जहां भारत के प्रवासी मजदूर सबसे पहले पहुंचे थे। चीनी का उत्पादन सदियों से यहां का बड़ा धंधा रहा है। अंग्रेज अफ्रीका से जत्थों में दास लाते थे और गन्ने के खेतों में झोंक देते थे। १८३४ में दास प्रथा खत्म हो गई। तब कुछ दाना-पानी की सुविधाएं- चाहे जैसी हों- देकर भारत से करार (एग्रीमेंट) पर मजदूर लाए जाने लगे। आदमी भी, औरतें भी। वे बेहद जरूरतमंद थे, खेती के जानकार, तपन में काम कर सकते थे और अत्याचार भी सह लेते थे। उनके साथ पांच या दस साल का करार होता था। परमिट की तर्ज पर करार को मजदूर गिरमिट (एग्रीमेंट) बोलते थे। इसलिए गिरमिटिया कहलाए जाने लगे।

वे ज्यादातर उत्तर प्रदेश और बिहार से आते थे। पहले कलकत्ता पहुंचते। फिर परदेस गमन की औपचारिकताएं पूरी कर जहाज से जॉर्जटाउन। सौ के जहाज में ढाई-तीन सौ सवार। सत्रह हजार किलोमीटर से ज्यादा की खतरों भरी मुसाफिरी। बंगाल की खाड़ी से कैरिबियाई सागर तक तीन महीने की नाकीय यात्राओं के कई किस्से जहां-तहां दर्ज हैं। उन्हें पढ़कर बेहिचक इस नतीजे पर पहुंचा जा सकता है कि गिरमिट प्रथा एक तरह दास प्रथा का दूसरा रूप थी। फर्क इतना ही था कि भारतीय मजदूर जंजीरों में नहीं बंधे होते थे। जहाज पर सवार होने वालों से गंतव्य तक पहुंचने वालों की तादाद हमेशा कम होती थी। लंबी बीमारी में पड़ जाने वालों को समुद्र में फेंक दिया जाता था। रेकार्ड के मुताबिक एक दफा एक जहाज वहां मजदूरों के बगैर पहुंचा।

भारतीय मजदूरों के पहले जहाज ने ५ मई, १८३८ को जॉर्जटाउन की गोदी में लंगर डाला था। दरअसल उस रोज वहां दो गिरमिटिया जहाज पहुंचे। यह दिवस भारतवंशी यहां हर साल पर्व की तरह मनाते हैं। जहाज के भव्य मूर्तिशिल्प के साथ एक बाग में ''आगमन दिवस स्मारक'' स्थापित है। चार साल पहले मैं गयाना से सटे देश सूरीनाम गया था। तब वहां भी ऐसा स्मारक देखा। त्रिनीदाद-टबेगो में तो ''आगमन दिवस'' राष्ट्रीय अवकाश होता है। तीनों देशों में भारतवंशी सबसे बड़ा जातीय समूह हैं। जमैका में दूसरा। अगल-बगल के द्वीपों- पनामा, डोमीनीका, बारबाडोस, ग्रेनाडा, सेंट किट्स आदि- में भी भारतीय मूल की आबादी है, लेकिन हाशिए की।

१८३८ से १९१७ तक कैरिबियाई क्षेत्र में पांच लाख से ज्यादा मजदूर भारत से लाए गए। उनमें ज्यादातर वहीं बस गए। गयाना और त्रिनीदाद-टबेगो में भारतीय वंश की आबादी आज वहां की शीर्ष सत्ता को झकझोरती है। गयाना १९६६ में आजाद हुआ। पड़ोसी त्रिनीदाद-टबेगो के चार साल बाद। भारतीय मूल के छेदी जगन गयाना की आजादी की लड़ाई में अगुआ थे। वे देश के पहले राष्ट्रपति बने। जॉर्जटाउन का हवाई-अड्डा उन्हीं के नाम पर है। बाद में उनकी अमेरिकी पत्नी भी गयाना की राष्ट्रपति हुईं। वर्तमान राष्ट्रपति भरत जगदेव हैं। त्रिनीदाद-टबेगो में भारत वेश के नूर हसनअली राष्ट्रपति और बसदेव पांडे प्रधानमंत्री रह चुके हैं। सत्ता पर जो काबिज हो, पौने दो सौ वर्षों में गिरमिटिया मजदूरों के वंशज इन देशों के कर्णधार बन गए हैं। सूरीनाम में रामसेवक शंकर राष्ट्रपति और रतनकुमार अयोध्या उपराष्ट्रपति रहे।

गयाना दक्षिणी अमेरिका में पड़ता है, लेकिन अंग्रेजी राज की वजह से वहां अलग संस्कृति पनपी। यहां यातायात बाईं तरफ चलता है और दक्षिण अमेरिका में अकेला देश है जिसकी राजभाषा अंग्रेजी है। सागर अभिमुख गयाना की संस्कृति कैरिबियाई द्वीप-समूह से ज्यादा मेल खाती है। यहां के खिलाड़ी कैरिबियाई क्रिकेट खेलते हैं और वेस्ट इंडीज टीम में भी। दो दफा भारतवंश के खिलाड़ी टीम के कप्तान भी रह चुके हैं। एक बार रोहण कन्हाई और फिर (हाल तक) शिवनारायण चंद्रपाल।

इंदुमति के घर हमें बहुत-सी जानकारी मिली। वहां की जीवन-शैली को समझने का मौका भी। लेकिन उसके बाद एक सवाल मुझे निरंतर मथता रहा: क्या भारतीय परंपरा भूमंडल के दूसरी तरफ कायम है? मां इंद्राणी की तरह इंदुमति गयाना में जन्मी है। गयानी नागरिक हुई। पहनावा वहां का है, भाषा भी। खान-पान, चाल-ढाल और सोच-विचार भी। लेकिन पीढ़ी-दर-पीढ़ी कुछ संस्कारों की छाया उसके साथ चली आती है। उसमें धर्म भी शामिल है, रीति-रिवाज भी। यह निरी रूढ़ि की लीक नहीं है। उसकी सहज मुस्कान और मां की करुणा में मैंने पहचानी हुई स्निग्धता देखी। अनजान लोगों के लिए सहज ही अपने घर के दरवाजे खोल देने में भी।

क्या मैं उनके बर्ताव में भारतीयता खोज रहा हूं? भारतवंशियों को परायी भूमि पर किस चीज ने बांधे रखा है? भारतीयता क्या है? क्या कोई गयानी या सरनामी रहते हुए भारतीय हो सकता है? चंद जीवन-मूल्यों का संवाहक! भारतीय मूल्य क्या हैं? राष्ट्रीयता का जीवन मूल्यों से क्या संबंध है? अमेरिका, कनाडा, अफ्रीका, यूरोप में बस गए भारतीय वहां के जीवन-मूल्यों से ज्यादा जुड़ाव महसूस करते हैं या भारतीय संस्कृति से? पाकिस्तान के क्रिकेट खिलाड़ी दिनेश कनेरिया हिंदू हैं और वहां के मुख्य न्यायाधीश राणा भगवानदास भी। धर्म से उनकी राष्ट्रीयता आहत नहीं होती। वे निष्ठावान पाकिस्तानी हैं। लेकिन व्यापक अर्थ में पाकिस्तान और बांग्लादेश क्या भारतीय संस्कृति से बरी हो सकते हैं?

क्या सिंधु घाटी की धरोहर पर पाकिस्तान का उतना ही हक- और दाय- नहीं, जितना भारत का? क्या हड़प्पा-मुअनजोदड़ो के नगर नियोजन, वास्तुकला और अमन के संदेश इन जगहों के पाकिस्तान की सहरद में चले जाने के बाद भारत और बांग्लादेश के लिए अप्रासंगिक हो गए हैं? पाकिस्तान कुछ दशक पहले भारत था। उन्नीसवीं सदी का राष्ट्रवाद उसके निर्माण की प्रेरणा बना। नया राष्ट्र बना। और इतिहास में जहां-जहां भारत लिखा था, वहां किताबों में उसे पाकिस्तान कर दिया गया। मसलन भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग को वहां बंटवारे से पहले के संदर्भ में भी सिर्फ 'पुरातत्त्व विभाग' लिखा जाता है! 'इंडियन सब-कांटीनेंट' 'सब-कांटीनेंट' कर दिया जाता है। कुछ लोग वहां सिंधु सभ्यता को भी अपने से अलग रखकर देखने की कोशिश करते हैं। इस 'दलील' से कि पाकिस्तान इस्लामी राष्ट्र है, इसलाम इलाके में आठवीं सदी में आया। इसलिए उससे पहले का इतिहास उनका कैसे हो सकता है! जाहिर है, यह अजीबोगरीब रवैया है। क्या इस तरह अतीत को पोंछा जा सकता है? क्या राष्ट्र लोगों से बड़ा होता है?

दरअसल, राष्ट्रवाद एक अलगाववादी धारणा है। वह दूरी बढ़ाता है। जबकि संस्कृति नजदीक लाती है। मुझे लगता है सांस्कृतिक अस्मिता धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान से बड़ी चीज है। वह बाकी पहचानों को समाहित रखते हुए भी कायम रह सकती है। मिथक, नीति, इतिहास, लोक-विश्वास, महाकाव्य, कथाएं, कला, संगीत-नृत्य, लोक-व्यवहार, परिवार, जीवन-शैली, मेले, नदियां, पर्व आदि ढेर उपादान मिलकर सदियों में एक बृहत्तर संस्कृति का निर्माण करते हैं। राष्ट्रों का बनना-बिगड़ना उसे क्यों प्रभावित करे?

आपस में टकराते ऐसे ढेर सवालों के बीच मैंने उद्घाटन के मौके पर गयाना के क्रिकेट स्टेडियम में एक बालिका समूह द्वारा प्रस्तुत भोजपुरी गीत सुने और राजस्थानी लोकनृत्य 'घूमर' देखा। म्हारी घूमर छे नखराली ऐ मां! वे लोग राजस्थानी क्या, इक्के-दुक्के जुमलों को छोड़ हिंदी भी नहीं जानते। लेकिन घूमर की ताल पर सात समंदर पार बैठा मेरा मन बरबस भीग आया। हम भारतवासियों को देखकर वहां के भारतवंशी जिस खुशी का चाक्षुष इजहार करते हैं, क्या वह महज भावुक संचार है? जैसे अभी मेरा मन! ठीक है कि उन्हें भारत की कोई स्मृति नहीं। उनके बाप-दादा कभी भारत नहीं जा-आ सके। उनकी माली हालत भी ऐसी नहीं। उन्हें नहीं

मालूम कि उदयपुर बिहार में है या राजस्थान में, जिसकी पीड़ा केदारनाथ सिंह ने बेजोड़ कविता 'त्रिनीदाद' में शिद्दत से बयान की है। लेकिन भारत उनके उस पुरखे की भूमि है, जिसे गरीबी और विवशता यहां के खेतों में घसीट लाई थी। हम उस भूमि से आए हैं। वे अभिभूत हैं और उन्होंने हमें हमारे देश के लोकगीत सुनाए हैं। बताने को कि लोग भूले नहीं हैं। शायद इसमें थोड़ा शिष्टाचार भी रहा हो। लेकिन क्या उनके भारत-बोध को कहीं से थोड़ी हवा और खाद-पानी नहीं मिल सकता?

वेस्ट इंडीज के सबसे बड़े द्वीप- बल्कि दो द्वीपों के जोड़े- त्रिनीदाद और टबेगो पहुंच कर ऐसे एक शख्स से मिला, जिसने स्मृतिलोप भारतवंशियों को अपनी जड़ों से जोड़ने की अनूठी कोशिश की है: घर-गांव के खोए पते ढूंढ़ कर। उनका नाम है शम्सुद्दीन। वह जिक्र अगली दफा, लेख के बाकी हिस्से में।